# उपसंहार

# उपसंहार

स्मृति ग्रन्थों में प्रतिपादित होने वाले विषयों के वर्गीकरण में यद्यपि कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नही खीची जा सकती है किन्तु इसमें जिन सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है उन्हें हम तीन भागों में बाँट सकते है, वे है - आचार, व्यवहार तथा प्रायश्चित। सुन्दर आचरण, समाजोपयोगी अपने व्यवहार तथा तदनुरूप आचरण अथवा व्यवहार न करने पर प्रायश्चित करना अथवा दण्ड प्राप्त करना -इन तीन विशिष्टताओं के कारण ही मनुष्य एक आदर्श सामाजिक प्राणी कहा जा सकता है। यदि मानव जीवन का लक्ष्य केवल खाना-पीना, सुखोपभोग करना ही रह जाए तो उसका अन्य प्राणियों से विभेद ही क्या रहा? धर्मशास्त्र मनुष्यों में मानवीय भावना का विकास करते हुए उसे ऐसी सीख प्रदान करते हैं जिससे वह समाज में रहकर अपनी उन्नति के साथ-साथ समाज की उन्नति के लिए उपयोगी हो सके। मनुष्य का आध्यात्मिक व सामाजिक विकास करने के लिए ये स्मृतियाँ सर्वाधिक उपयोगी है।

स्मृतिग्रन्थ भारतीय धर्मशास्त्र के आधारभूत है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ जीवन के हर क्षेत्र में धर्म की महत्ता को स्वीकार कर के मानवों के लिए दिशा निर्देशन का कार्य करते है। इन ग्रन्थों के अनुसार मनुष्य का प्रत्येक कार्य धर्मानुकूल होना चाहिए। किंतु आज धर्म शब्द का जो दुरूपयोग हो रहा है उससे धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के धर्मशब्द का दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नही है। आज हम सामान्य व्यवहार में जिस धर्म शब्द का उल्लेख करते है वह सम्प्रदाय अथवा पन्थ का द्योतक है। परन्तु हमारे ऋषि-मुनियों ने जिस धर्म शब्द को व्याख्यायित किया है, वह एक-एक ऐसे उच्च आदर्श युक्त मानवता का उन्नायक है जिससे कोई भी मनुष्य यथार्थतः मनुष्य होने में सक्षम हो पाता है।

वस्तुतः जीवन के उच्च आदर्शो एवं आचरणों का सारा भाव धर्म शब्द के अन्दर निहित है। स्मृतिकारों ने उसी धर्म का विवेचन किया है और उसी का भिन्न-भिन्न रूप में वर्गीकरण किया है। वर्णधर्म, आश्रमधर्म, गुणधर्म, निमित्तधर्म, सामान्यधर्म आदि भेद से जिन धर्मो का निर्देश स्मृतिकारों ने किया है उसके अन्तर्गत समाज में रहने वाले प्रत्येक मानव के हर युग के कार्यो का समावेश हो जाता है। स्मृतिग्रन्थ वर्ण व्यवस्था के परिपोषक है, इसी तरह प्रत्येक आश्रम में रहने वाले व्यक्तियों के लिए भी अलग कोटि के धर्मो का उल्लेख स्मृतिकारों ने किया है। इसी प्रकार किसी विशिष्ट वर्ण के व्यक्ति का

किसी विशेष आश्रम में रहने के समय भी उसका धर्म भिन्न प्रकार का होता है। समाज के विशिष्ट व्यक्तियों -राजा आदि के धर्मों को गुणधर्म के अन्तर्गत समाहित किया जाता है। स्मृतिकारों ने समाज में निषिद्ध या गर्हित कार्य करने पर उसके लिए प्रायश्चित आदि का विधान किया है, इसे ही निमित्त धर्म माना गया है। इन विशिष्ट प्रकार के धर्मों के अतिरिक्त स्मृतिकारों ने कुछ ऐसे सामान्य धर्मों का उल्लेख किया है जो सभी प्रकार के मानवों के लिए सदैव आचरणीय हैं। ऐसे सामान्यधर्मों में जिन आचरणों का उल्लेख स्मृतिकारों ने किया है, वे शाश्वत एवं चिरन्तन सत्य को अभिव्यक्त करते हैं।

स्मृतिकारों ने वस्तुत: जिस धर्म का प्रतिपादन किया है, वह मनुष्य के ऐसे कार्यों का पर्याय है जिन का पालन करने से यथार्थ रूप में मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है। ऐसे धर्म की प्रासंगिकता आज के सामाजिक सन्दर्भ में तो निर्विवाद रूप से है ही, यह हर काल एवं स्थान के लिए भी प्रासंगिक माना जाएगा। समाज में वही व्यक्ति धर्मानुकूल आचरण कर सकता है जिसका आचार शुद्ध हो। इसी कारण स्मृतियों में आचार की शुद्धि सर्वोपरि मानी गई है। मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी हो सकता है जब वह अपने आचार को शुद्ध रखे। इसी बात का ध्यान में रखते हुए स्मृतिकारों ने विस्तार से मानवों के लिए समाजोपयोगी करणीय तथा अकरणीय कार्यों का निर्देश किया है। अकरणीय कार्यों के करने पर दण्ड अथवा प्रायश्चित का भी विधान किया गया है।

आचार शुद्धि के लिए ही स्मृतियों में वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रतिपादन हुआ है। स्मृतिकारों ने मनुष्य की औसत आयु एक सौ वर्ष निर्धारित करते हुए उसे जिन चारों भागों में बराबर-बराबर हिस्से में बाँटा है वह एक आदर्श समाज को द्योतित करता है। किन्तु आज इसकी विकृत स्थिति स्पष्ट तथा परिलक्षित होती है। स्मृतिकारों ने निर्देश दिया है कि ब्रह्मचर्य अवस्था में ब्रह्मचारी को इन्द्रिय निग्रह आदि के साथ केवल अध्ययन में रत रहना चाहिए, किन्तु आज स्थिति सर्वथा विपरीत है।

यदि मनुष्य प्रारंभिक जीवन के चतुर्थांश का उपयोग अध्ययनादि में मनो योग पूर्वक करें तो निश्चित रूप से उसका बाद का जीवन सुखमय होगा। इसी तरह उसे अपने जीवन के द्वितीय चतुर्थांश को गृहस्थ के रूप में बिताना चाहिए। ऐसे समय में वह धर्मानुकूल आचरण करता हुआ कामोपभोग में प्रवृत्त हो। परन्तु स्मृतिकारों ने उसे कामोपभोग को भी नियन्त्रित करने का निर्देश किया है। स्मृतिकारों ने मनुष्य के लिए अपने जीवन के तीसरे भाग में समाज

में रहते हुए भी सामाजिक बन्धनों से मुक्त रहने का निर्देश दिया है और बताया है कि अपनी अन्तिम जीवनावस्था में उसे संन्यास ग्रहण करके मुक्ति का उपाय खोजना चाहिए। स्मृतिग्रन्थों में जिस आश्रम व्यवस्था का उल्लेख किया गया है वह एक आदर्श समाज को परिकल्पित करता है। आज हम उस आश्रम व्यवस्था को सर्वथा भूल चुके है, दुष्परिणाम स्वरूप आज मनुष्यों में शान्ति का भाव विद्यमान नहीं है। स्मृतिकारों ने चतुर्विध पुरूषार्थो मे से किसी भी पुरूषार्थ को उपेक्षणीय नहीं माना है। वस्तुतः एक आदर्श मानव के लिए अपने जीवन में इन चारों पुरूषार्थो की प्राप्ति के लिए सार्थक प्रयास करना चाहिए। चारों पुरूषार्थो का विस्तृत विवेचन भी स्मृति ग्रन्थों में मिलता है।

आचार शुद्धि के लिए ही विभिन्न प्रकार के संस्कारों का उल्लेख स्मृतिकारों ने किया है। ये संस्कार मानव जीवन की उच्छृँखलता को संयमित करने के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। ये संस्कार मनुष्य में नैतिकता, आदर्श, मर्यादा आदि के जनक हैं। इन संस्कारों से संस्कारित होकर ही मानव यथार्थरूप से मानव कहलाता है। स्मृतिग्रन्थों में प्रतिपादित संस्कार मानव जीवने के लिए सदैव उपयोगी सिद्ध है।

भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के मूल में भी उच्च भावना रही है। ऋषियों ने कर्म सिद्धान्त के अनुसार वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन किया था किन्तु स्मृतिग्रन्थों के समय तक आते-आते कर्म सिद्धान्त जन्म सिद्धान्त में परिवर्तित हो गया। फिर भी तत्कालीन समाज के लिए यह सिद्धान्त उपयोगी रहा होगा। आज के सन्दर्भ में उसमें आवश्यक परिवर्तन करके इसे स्वीकार किया जा सकता है। स्मृतिकारों द्वारा प्रतिपादित वर्णव्यवस्था को पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता है। आज आवश्यकता है कि उस वर्ण व्यवस्था में आवश्यक संशोधन करके उसे देश कालानुरूप व्यवस्थित किया जाए।

मनुष्य को आदर्श सामाजिक प्राणी बनाने की दृष्टि से स्मृतिग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। बहुत सामान्य परिवर्तन के साथ उसमें प्रतिपादित परिवार व्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था का पालन करके हम एक आदर्श परिवार तथा समाज की परिकल्पना कर सकते है। स्मृतिकारों ने परिवारोचित तथा समाजोचित कार्य नहीं करने वालों के लिए दण्ड या प्रायश्चित का भी विधान किया है। इन प्रायश्चितों में से अनेक प्रायश्चित्त मानसिक हैं। वस्तुतः किसी प्रकार की गलती करके यदि कोई व्यक्ति अपनी गलती को स्वीकार कर लेता है तो उससे बढ़कर कोई दूसरा प्रायश्चित्त नहीं हो सकता है। अतः समाज में गलत आचरण तथा व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को सुधारने के लिए उसे

प्रेरित करना चाहिए और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे वह स्वयं अपनी गलती महसूस कर ले एवं पुनः ऐसी गलती को न दोहराने का संकल्प ले। परन्तु जो व्यक्ति प्रायश्चित्त से अपने को सुधारने में समर्थ न हो ऐसे व्यक्ति को दण्डित करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

स्मृति-ग्रन्थों में मानव जीवन को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए जो दिशा-निर्देशक तत्व बताए गए हैं उनका समुचित पालने करके कोई व्यक्ति आदर्श सामाजिक हो सकता है। वस्तुतः स्मृतियां हमारी सनातन श्रुति परम्परा की वाहक हैं। श्रुतियों के गूढतम धर्मशास्त्रीय विचारों को स्मृतियों के द्वारा पल्लवित, पुष्पित एवं फलित किया गया है। सम्पूर्ण अपौरूषेय श्रुति वाङ्.मय प्रतीकों के माध्यम से स्मृति वाङ्.मय में प्रवेश करते हुए धर्मशास्त्रीय तत्वों से सम्पृक्त होकर जिस सामाजिकता, सांस्कृतिकता और नैतिकता को जन्म देता है, उसी को आधार बिन्दु मानकर प्रमुख स्मृतियों में देशकाल भेद से स्मृति वाङ्. मय उत्तरोत्तर समृद्ध से समृद्धतर होता गया है। स्मृति साहित्य और उनमें प्रतिपादित नियम आज भी समाज के लिए प्रासंगिक हैं किन्तु परिस्थिति वश समाज उन्हें स्वीकार नहीं कर पर रहा है। यदि स्मृतियों की उपयोगिता समाज स्वीकार नहीं करता तो दोष स्मृतियों का नहीं, पतनोन्मुखी समाज का है। मेरा यह दुराग्रह नहीं है कि स्मृति ग्रन्थों में कही गई सभी बातें अपना ली जाएं किन्तु समाज के कल्याणकारी सद्भाव वाले सदाचार और उपयोगी नित्य-नैमित्तिक नियमों के अपनाने से पुनः सुख, शान्ति, सद्भाव और सामञ्जस्य समाज में लौट आएगा।

भिन्न-भिन्न स्मृतियां भिन्न-भिन्न समय में समाज को उचित उपदेश देने हेतु लिखी गई। समाज के व्यक्ति कुछ समय तक तो तत्कालीन स्मृति के नियमानुसार आचरण करते रहे होंगे, कालान्तर में उनके विपरीत आचरण करने लगे होंगे। यह सत्य है कि कोई भी नियम या आदर्श दीर्घ काल तक समाज पर प्रभावशाली नहीं रहता। विष्णु स्मृति कालीन समाज में भी शनैःशनैः यह शिथिलता प्रविष्ट हो चुकी होगी। अमर्यादित और स्वैच्छिक आचरण जनसामान्य में पुनः अंकुरित होने लगा होगा। इसी सन्दर्भ में किसी विद्वान् ने समाज को पुनः मर्यादित, सच्चरित्रयुक्त बनाने की दृष्टि से विष्णुस्मृति की रचना इस विधि और मनोवैज्ञानिक आधार पर की जिससे वह प्रभावशाली बन सके। विष्णुस्मृति में तत्कालीन समाज के लिए अथवा उत्तर कालीन समाज के लिए कोई विशेष नियम या आदर्श प्रतिपादित नहीं किया गया है अपितु पूर्वकालिक स्मृतियों के उत्तम और कल्याणकारी आचारादर्शों को नव्य रूप में पुनः प्रभावोत्पादक शैली में व्यवस्थित किया गया है। इसका एक मात्र लक्ष्य अन्य स्मृतिकारों की भांति

यही प्रतीत होता है कि समाज की दोष हीन, मर्यादित तथा उच्चादर्शयुक्त महत्ता पुनः सुगठित की जाए, जिससे पतनोन्मुखी समाज फिर से सन्मार्ग पर चल सके।

विष्णुस्मृति के अन्तर्गत जिन-जिन विषयों का समावेश किया गया है, वे अन्य स्मृतियों की भांति आचार-विचार, कर्त्तव्याकर्त्तव्य एवं प्रायश्चित्त ही है। इन तीनों विषयों के बिना व्यक्ति और समाज का विकास असंभव है। इनके बिना मनुष्य को जो सर्वोच्च प्राणी होने का सम्मान मिला है, वह भी उसे प्राप्त नहीं होगा। विष्णुस्मृति मनुष्यों के आचरण के सम्बन्ध में स्पष्ट करती है कि मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी संभव है जब वह अपना आचरण शुद्ध रखते हुए संयम, नियम का पालन करता रहे। इसी कारण स्मृतिकार ने संस्कारों का भी विधान किया है जिससे व्यक्ति अनुशासन, मर्यादा, नैतिकता आदि की शिक्षा प्राप्त करके मानवता के मूल तत्वों का विकास कर सके। स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से ही विहितावि‍हित, त्याज्य और करणीय कार्यो का बोध होता है। ज्ञाताज्ञात अवस्था में जो शारीरिक या मानसिक पाप हो जाते है, उनके परिमार्जन हेतु प्रायश्चित्त करनेका विधाान स्मृति की अपनी विशिष्ट विशिष्टता है।

इस शोध-प्रबन्ध में विष्णुस्मृति के विभिन्न पक्षों एवं सन्दर्भो की नैकविध धर्म शास्त्रीय तात्त्विक प्रमाणों से ओतप्रोत सिंहावलोकन शैली में गवेषणा की गयी है। इस ग्रन्थ में जिन विषयों की चर्चा की गई है उनका एकमात्र लक्ष्य सामाजिक सुव्यवस्था और व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक क्षमता का क्रमिक विकास करना है। स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था हेतु स्मृतियों का आज भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्मृतियों में प्रतिपादित नियम, आचरण, मर्यादायें मनुष्य को यथार्थ रूप में मनुष्य बनाने तथा सुख वैभव सम्पन्न समाज निर्मित करने में आज भी समर्थ है। निश्चित रूप से स्मृतिग्रन्थों में प्रतिपादित प्रायः सभी विषय एक व्यक्ति को आदर्श व्यक्ति बनाने में पूर्णतया सक्षम है।